न ओहि मरहि न ठागे जाहि।
जिनकै राम बसै मन माहि।।
तिथै भगत वसहि के लोअ।
करहि अनंदु सचा मनि सोइ।।

जिनके मन में राम बस गया, जिनके मन में परमात्मा आ गया, और जिनका हृदय आपूर भर गया उससे, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें। तुम्हारी मृत्यु है। परमात्मा की कोई मृत्यु नहीं। लहरें बनती हैं, मिटती हैं। सागर सदा है। जब तक तुम लहर के साथ अपना तादात्म्य किए हो तब तक मरोगे। इसलिए तो हम इतने भयभीत हैं मृत्यु से। क्योंकि लहर से अपने को एक माने हुए हैं। मृत्यु सुनिश्चित है। लहर तो मरेगी, तुम्हारा तादात्म्य मरेगा, तुम्हारी आइडेंटिटी मरेगी। तुमने गलत संबंध जोड़ रखा है।

लेकिन अगर तुम राम से जुड़ गए, तुम परमात्मा से जुड़ गए, फिर कैसी मौत? इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह अपना संबंध खुद ही तोड़ लेता है। वह तादात्म्य को अलग कर लेता है। वह जान लेता है कि न मैं शरीर हूं, न मैं मन हूं। ये दोनों मरेंगे। न मैं अहंकार हूं। वह भी मरेगा। वह मरणधर्मा है। वह तो छोटा सा लहरों में उठा हुआ रूप है। और लहर कितनी ही सुंदर मालूम पड़े और कितनी ही ऊंची उठ जाए, एक

मृत्यु पर ध्यान

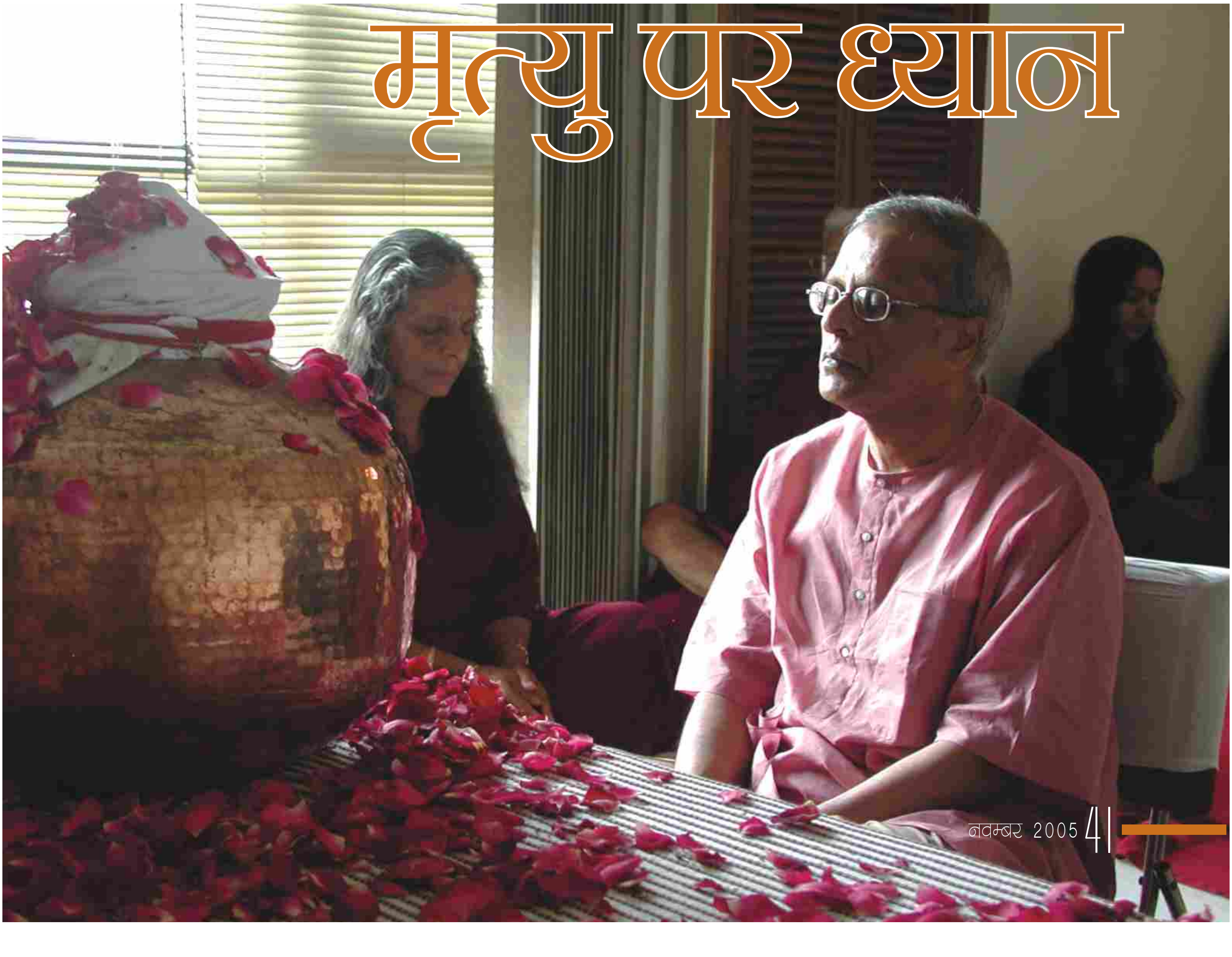

जवानी में लहर बड़ी ऊपर होती है। इसलिए तो जवानी मूढ़ है। इसलिए पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। पश्चिम ने भरोसा किया है। तो मुसीबत है। मुसीबत रोज बढ़ती जाती है। पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। और जवानी को कोई बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। क्या मूढ़ता को स्थान देना है

क्षण में आकाश को छूने का दंभ भरे, दूसरे ही क्षण विघटन शुरू हो जाता है। जवानी में भी लहरें आकाश को छूने का दंभ भरती हैं। बुढ़ापे में उन्हीं से पूछो।

मैंने सुना है कि एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी। सुबह के नाश्ते की तलाश में निकली। सूरज पीछे उग रहा था। बड़ी लंबी छाया पड़ी। उस लोमड़ी ने अपनी छाया देखी और उसने कहा कि आज तो नाश्ते में कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी। इतनी लंबी छाया। तो जितनी लंबी छाया, उतना बड़ा मैं। और लोमड़ी के पास और कोई उपाय भी तो अपने को जानने का नहीं है। छाया ही दर्पण है। ...कि इतना बड़ा मेरा शरीर, एक ऊंट चाहिए नाश्ते में!

खोजती रही। दोपहर हो गयी, सूरज सिर पा आ गया। छाया सिकुड़ कर छोटी हो गयी। बिलकुल न के बराबर हो गयी। दोपहर तक ऊंट को न खोज पायी। खोजती भी कैसे? लोमड़ी ऊंट को पाती भी कैसे? और पा भी लेती तो कैसे नाश्ता करती? भूख बढ़ गयी। नीचे झुक कर देखा, छाया बड़ी छोटी हो गयी है। उसने कहा कि अब तो एक चीटी भी मिल जाए तो भी काम चल जाएगा।

जवानी में लहर बड़ी ऊपर होती है। इसलिए तो जवानी मूढ़ है। इसलिए पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। पश्चिम ने भरोसा किया है। तो मुसीबत है। मुसीबत रोज बढ़ती जाती है। पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। और जवानी को कोई बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। क्या मूढ़ता को स्थान देना है? वह तो लहर की ऊंचाई है। छाया बड़ी पड़ती है उस समय। उस छाया के बड़े पड़ने में बड़े-बड़े सपने उठते हैं। हर आदमी क्या-क्या नहीं होना चाहता है! पूर्व ने बुढ़ापे को आदर दिया है, जब छाया बिलकुल सिकुड़ जाती है। और अगर बुढ़ापे में भी तुम न जागे अहंकार से, तो फिर तुम कब जागोगे? जवानी में जाग जाओ, तुम महिमाशाली हो। बुढ़ापे में न जागो, तो तुम महामूढ़ हो। जवानी में क्षम्य है न जाग सको, बुढ़ापे में क्षमा भी नहीं की जा सकती।

जैसे ही कोई जाग कर जीवन को देखना शुरू करता है, वैसे ही पाता है कि मैंने गलत से संबंध जोड़ रखा है—शरीर से। अगर तुम शरीर को देखो तो हर सात साल में बदल जाता है—पूरा का पूरा। तुम तो फिर भी रहते हो। एक दिन मां के पेट में इतना छोटा था कि बड़ी खुर्दबीन से देखते तो ही देख पाते, वह भी तुम्हारा शरीर था। फिर एक दिन जब तुम मर जाओगे, राख की छोटी सी पोटली ले कर तुम्हारे परिवार के लोग गंगा जाएंगे फूल चढ़ाने, वह भी तुम्हारा ही शरीर होगा। फिर बीच में कितने उतार-चढ़ाव देखे! इस शरीर के साथ तुम अपने को एक कर लोगे तो मृत्यु से कंपोगे, डरोगे, भयभीत रहोगे। इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह खुद ही अपने हाथ मर जाता है।

नानक के जीवन में ऐसा उल्लेख है, कि एक रात वे घर से उठे और मरघट पहुंच गए। खोजते हुए घर के लोग पहुंचे। उन्होंने कहा, यह कोई जगह है? अगर ध्यान ही करना हो तो घर में, मंदिर जाते। मरघट आए! नानक ने कहा कि मैंने सोचा, जहां आखिर में जाना है, किसी के कंधे पर चढ़ कर क्या जाना! अपने हाथ ही चला आया। और जहां अंत में पहुंचना है, उसको पहले ही ठीक से देख लेना चाहिए। यहीं ध्यान करूंगा। क्योंकि मौत ही ध्यान है। और क्या ध्यान है?

अगर तुम मृत्यु पर ध्यान कर लो तो धीरे-धीरे मृत्यु हट जाती है। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा घुसता है, वैसे-वैसे मृत्यु की ऊपरी पर्त हट जाती है। भीतर तुम अमृत को छिपा हुआ पाते हो। लहर खो जाती है, सागर मिलता है।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे, कि वहां चले जाओ अगर बुद्धत्व पाना है। जलते हुए देखना लोगों को। हड्डियों को राख होते देखना। चमड़ी से धुआं उठते, लपटें उठते देखना। देखना, अपने ही सगे-संबंधी आ कर सिर फोड़ जाते हैं। देखना, जिन पर इतना भरोसा किया था, मरते ही एक क्षण देर नहीं करते। जल्दी अर्थी उठाते हैं और भागते हैं। क्योंकि कौन घर में रखेगा मुर्दे को? जिन्होंने कहा था, सदा-सदा साथ रहेंगे, वे भी चार दिन के बाद ऊब जाते हैं, रोने से ऊब जाते हैं। वे फिर अपने काम में संलग्न हो जाते हैं। और जब सब छोड़ कर चले जाएं किसी मुर्दे को, तो तुम शांत उस मुर्दे को जलते हुए देखना। यही तुम्हारी भी स्थिति होगी। आज नहीं कल, समय का फासला है। बुद्ध पहले भिक्षुओं को भेज देते, कि पहले तुम मरघट से गुजर जाओ। वे इसलिए भेजते कि पहले तुम मर कर आ जाओ, तो काम एकदम आसान हो जाए।

अगर तुम मृत्यु पर ध्यान कर लो तो धीरे-धीरे मृत्यु हट जाती है। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा घुसता है, वैसे-वैसे मृत्यु की ऊपरी पर्त हट जाती है। भीतर तुम अमृत को छिपा हुआ पाते हो। लहर खो जाती है, सागर मिलता है

एक तीन महीने भिक्षु मरघट पर दिन और रात देखता मौत—और मौत—और मौत! मौत सघन हो जाती चारों तरफ। सब तरफ से मौत दिखायी पड़ने लगती। हर चीज जलती हुई मालूम पड़ती। फिर भी वह पाता कि भीतर कोई सजगता है, जिसके जलने का कोई उपाय नहीं। जो जल नहीं सकती। आग चैतन्य को छू भी तो नहीं सकती। चेतना और अग्नि का कोई लेना-देना भी तो नहीं हो सकता। कहीं रास्ता भी तो एक-दूसरे का नहीं कटता। वह ज्यादा सचेतन हो कर लौटता है। वह अपने पुराने तादात्म्य को तोड़ देता है। तब बुद्ध कहते हैं, अब आसान है।

इब्राहिम एक सूफी फकीर हुआ। वह पहले सम्राट था। फिर जब फकीर हो गया, तो गांव के बाहर ही रहता था अपनी राजधानी के। हुंच

अक्सर यात्री वहां से आते-जाते पूछते उससे कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता, बाएं चले जाओ, भूल कर दाएं मत जाना। कई लोग दाएं जा कर भटक जाते हैं। बाएं बस्ती है, दाएं मरघट है। लोग जाते बाएं, उसका मान कर। दो-चार मील चल कर पाते कि मरघट में पहुंच गए। बड़े नाराज हो कर वापस लौटते कि तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? फिर जब दाएं जाते तो बस्ती पाते।

तो इब्राहिम उनसे कहता कि मैं भी उस बस्ती में था। लेकिन यह मुझे समझ में आ गया कि यह मरघट है। यहां सभी मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जहां लोग मरने की प्रतीक्षा कर रहे हों, जो मृत्यु का प्रतीक्षालय हो, उसको बस्ती क्या कहना! जहां सभी उजड़ेंगे, आज नहीं कल, उसको ां जो

बस्ती क्या कहना! और जहां मरघट है, जहां लोग मरघट कहते हैं, वहां बसा हुआ फिर कभी भी नहीं उजड़ता। वहां जो बस गया, बस गया। उसको मैं बस्ती कहता हूं।

हमारी बस्तियां मरघट हैं, हमारे मरघट आखिरी बस्तियां है। ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। और अज्ञानी मरते-मरते तक आखिरी चेष्टा करता है—बचा रहूं, बचा रहूं, बचा रहूं। ज्ञानी एक ही बार मरता है। अज्ञानी लाखों बार मरता है। क्योंकि जितना तुम बचाते हो, फिर मरना पड़ता है। फिर-फिर मरना पड़ता है। जब तक तुम यह पाठ सीख ही न लो तब तक तुम्हें बार-बार मरना पड़ेगा।

मृत्यु एक शिक्षण है। जैसे कोई बच्चा स्कूल जाए और एक ही क्लास में बार-बार अनुत्तीर्ण होता रहे, फेल होता रहे, तो बार-बार उसी क्लास में भेज दिया जाता है। वैसे मृत्यु एक महाशिक्षण है। उसके द्वारा जब तक तुम अमृत को न पहचान लोगे, तब तक बार-बार लौटते रहोगे।

एक संगीतज्ञ गीत गा रहा था। हाल बार-बार कहता, फिर से! वन्स मोर! सारी भीड़ जोर से कहती, फिर से! वह फिर गाता। ऐसा होते-होते आठवीं बार आ गयी। उसका गला तक रुंधने लगा, थक गया। उसने कहा, भाइयो, बहुत-बहुत धन्यवाद कि तुमने इतनी बार मेरे गीत की मांग की। लेकिन अब मैं थक गया हूं। आखिरी बार गाए देता हूं। फिर मत कहना। फिर और दुबारा मत कहना वन्स मोर! एक आदमी ने खड़े हो कर कहा कि कौन तुम्हारे गीत के लिए कह रहा है वन्स मोर। जब तक तुम ठीक से न गाओगे तब तक हम कहते ही रहेंगे। तुम बिलकुल गलत गा रहे हो। और जब तक तुम रास्ते पर न आओगे तब तक हम बार-बार मांग करते रहेंगे।

आवागमन परमात्मा की बार-बार तुमसे मांग है कि ठीक से गाओ। वह प्रशिक्षण का हिस्सा है। उससे गुजरना जरूरी है। जो समझ जाता है, वह मृत्यु से अपना तादात्म्य तोड़ देता है।

नानक कहते हैं, 'जिनके मन में राम बस गया, न वे मरते हैं और न ठगे जाते हैं।'

मरते नहीं। ठगे भी नहीं जाते हैं। और तुम कितनी ही होशियारी करो, तुम कितनी ही कुशलता करो, तुम ठगे ही जाओगे। क्योंकि कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें ठग रहा है! तुम खुद ही ठग रहे हो। कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें लूट पाता है। कोई दूसरा तुम्हें लूट ही नहीं सकता। तुम गलत से अपने को जोड़े हो, इसलिए दूसरा लूट पाता है। और तुम्हारी दृष्टि ऐसी भ्रांति से भरी है कि उस भ्रांति के कारण तुम्हें चारों तरफ दुश्मन दिखायी पड़ते हैं। हर एक तुम्हें लूटने को तैयार है।

रामकृष्ण कहते थे कि एक चील एक मांस के टुकड़े को ले कर उड़ी। बहुत सी चीलों ने उसका पीछा किया। चीलें उसे चोंच मारने लगीं। उस पर झपट्टे मारने लगीं। वह भी अपने मांस के टुकड़े को बचाने के लिए बड़ी कोशिश करने लगी। लेकिन चीलों की बड़ी भीड़ थी। पंख उसके लहूलूहान हो गए। और सभी उसके मांस को छीन लेने की कोशिश में थीं। अंततः क्ष

उसने मांस का टुकड़ा छोड़ दिया। मांस का टुकड़ा छोड़ते ही सारी चीलें उसे छोड़ कर चली गयी। वह अपने वृक्ष पर बैठ कर विश्राम करने लगी। रामकृष्ण कहते थे, जिस दिन मैंने उसे देखा, मैंने भी मांस का टुकड़ा छोड़ दिया। फिर मेरा कोई दुश्मन न रहा। दुश्मन मेरा कोई था नहीं। वह मांस का टुकड़ा ही उपद्रव था।

तुम जब तक धन को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। जब तक तुम पद को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। दुश्मन नहीं है असली में, तुम्हारी पकड़ में कहीं भूल है। और जब तक तुम कुछ पकड़े हो, तुम्हें हर एक—मित्र भी—दुश्मन जैसा दिखायी पड़ेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत नाराज थी। और अनर्गल बक रही थी। मुल्ला सीधा-सादा, अपने पेट के दोनों खीसों में हाथ डाले खड़ा था, जैसा कि अक्सर पति खड़े रहते है! पत्नी ने अंततः काफी गाली-गलौज करने के बाद कहा कि बंद करो यह! क्यों अपने खीसे में मुट्ठियां ताने मेरी तरफ खड़े हो?

खीसे में मुट्ठियां ताने? वह बेचारा सिर्फ अपने बचाव के लिए चुपचाप खड़ा है। लेकिन अगर तुम नाराज हो तो सभी मुट्ठियां तनी हुई मालूम पड़ती है।

खीसे में पड़े हुए हाथ भी मुट्ठियों जैसे दिखायी पड़ते है। तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि बनती है। तुम जैसा देखते हो...और मांस का टुकड़ा तुम पकड़े हो, तो तुम ठगे जाओगे। मांस का टुकड़ा यानी शरीर। जब तक तुम शरीर को पकड़े हो, तब तक ठगे जाओगे। तब तक बचने का कोई उपाय नहीं। कितनी ही कुशलता करो।

कबीर कहते हैं, काहे की कुशलता, कर दीपक कुंभे पड़े।

तुम्हारी कुशलता का कोई भी मूल्य नहीं। दो कौड़ी की तुम्हारी कुशलता नहीं है। क्योंकि तुम कहते हो हाथ में दीया है, फिर भी कुएं में गिरते हो। कर दीपक कुंभे पड़े—कैसी तुम्हारी कुशलता है कि चेतना का दीपक है, गिरते कुएं में हो?

नहीं, ठगे ही जाओगे। क्योंकि तुम ठगे जाने की हो तैयारी कर रहे हो। तुम गलत से संबंध जोड़ते हो। जिसने गलत से संबंध जोड़ा, उसने अपना ही रास्ता बना दिया कि ठगा जाए। मांस के टुकड़े को पकड़ते हो, फिर चीलें झपटेंगी।

'जिसके मन में राम बसे हैं, न वह मरता न ठगा जाता। यह जो लोक है—कृपा का लोक—कृपा का खंड, वहां अनेक लोकों के भक्त बसते हैं। सच्चे नाम को मन में बसाए हुए वे आनंद मनाते हैं।'

— ओशो
एक ओंकार सतनाम, उन्नीसवां प्रवचन
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)